How to Cite:
(Aug 2008). प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा
***International Journal of Economic Perspectives*), Vol 2 (8) 32-36.**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा

OM PRAKASH, Lecturer in History,

Babu Shobh Ram Government Arts college Alwar (Rajsthan)

प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा एक अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल विषय हैए जो न केवल राजनीतिक व्यवस्थाए बल्कि समाजए संस्कृति और अर्थव्यवस्था से भी गहरा जुड़ा हुआ था। भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में राज्य गठन और उसके विकास ने समाज की संरचना और जीवन के अनेक पहलुओं को प्रभावित किया। वेद और उपनिषदों में राज्य की अवधारणा का उल्लेख मिलता हैए जहाँ ऐसा माना जाता था कि एक उचित शासकए जिसे श्राजाश कहा जाता थाए को अपने प्रजा के कल्याण का ध्यान रखना चाहिए। प्राचीन भारतीय शासकों को श्धर्मराजाश के रूप में जाना जाता थाए जिन्हें नीतिए न्याय और धर्म का पालन करने का दायित्व उठाना होता था।

राज्य की स्थापना के लिए विभिन्न प्रकार के संघठनों का निर्माण हुआ। महाजनपदों की अवधारणा उस समय की महत्वपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था थी। जब विभिन्न जनजातीय समूहों ने संगठित होकर स्थायी बस्ती बनाईए तो उन्होंने राज्य की आवश्यकता महसूस की। इन महाजनपदों का शासक अपने अधीनस्थों के माध्यम से शासन करते थेए जिनमें सेनाए न्यायालय और प्रशासनिक अधिकारी शामिल होते थे। यह प्रणाली केवल शासक और प्रजा के बीच के रिश्ते को नहीं दर्शातीए बल्कि सामाजिक वर्गों और आर्थिक व्यवस्थाओं का भी चित्रण करती है।

प्राचीन भारत में राज्य की अधिकारियों की नियुक्ति और उन पर नियंत्रण का एक स्पष्ट ढाँचा था। शासक को अपने राज्य की सुरक्षाए समृद्धि और न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक सशक्त सेना की आवश्यकता होती थी। साम्राज्य विस्तार की चाह में शासकों ने युद्धों का सहारा लिया और विजित क्षेत्रों पर नियंत्रण स्थापित किया। इसके साथ हीए विभिन्न सामंतों और राजाओं के बीच गठबंधन और राजनीतिक शादी भी राज्य की स्थिरता और सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

सम्राट अशोक का काल प्राचीन भारत के राज्य की अवधारणा में एक मील का पत्थर साबित हुआ। उन्होंने श्धर्मश की नीति को अपनाया और अपने राज्य में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। उनकी शासन शैली ने राज्य की सामाजिक जिम्मेदारी को उजागर कियाए जिसमें प्रजा के कल्याण को प्राथमिकता दी गई। अशोक के द्वारा स्थापित प्रशासनिक प्रणालीए जिसमें न्याय और कानून को महत्व दिया गयाए ने भारतीय राजनीतिक विचारधारा को एक नई दिशा दी।

© 2008 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

How to Cite:
(Aug 2008). प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा
***International Journal of Economic Perspectives*), Vol 2 (8) 32-36.**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article
राज्यों के बीच राजनीतिकए सांस्कृतिक और आर्थिक आदान.प्रदान ने भी राज्य की अवधारणा को समृद्ध किया। व्यापार मार्गों के विकास और सांस्कृतिक संपर्क ने विभिन्न राज्यों के बीच सहयोग को बढ़ावा दिया। इस प्रकारए प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा केवल एक प्रशासनिक इकाई तक सीमित नहीं थीए बल्कि यह एक सामाजिकए धार्मिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से भी जुड़ी हुई थी। इसने न केवल राजनीतिक तंत्र का ढाँचा तैयार कियाए बल्कि भारतीय समाज की आत्मा को भी परिभाषित किया। प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा का यह समग्र अध्ययन हमें आज भी कई महत्वपूर्ण सबक सिखाता हैए जो समकालीन प्रशासनिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के लिए प्रासंगिक हैं।

मानव इतिहास के विकास – क्रम में एकांकी जीवन से कबीलाई संस्कृति तक का सफर तत्प"चात् समाज एवं राज्य के रूप में उसका विकास जानने की जिज्ञासा सदैव ही मानव मस्तिष्क को कचोटती रही है। समाजशास्त्रियों एवं मानवविज्ञानियों ने वि"व के अलग – अलग भागों में समाज एवं राज्य की विकास प्रक्रिया को जानने की लगातार कोि"ा"ा की है। भारत में भी प्राचीनतम संस्कृति के अव"ोषों के रूप में सिंधु सभ्यता और तत्प"चात् वैदिक जीवन शैली , ने उस दौर में भी, राज्य की व्यवस्था को सहज एवं सामान्य जीवन का एक प्रमुख अंग स्वीकार किया है। वेदों की उत्पत्ति के साथ ही राज्य की संरचना भी उसी व्यापक व्यवस्था का हिस्सा बन गयी। कालांतर में वाल्मीकी ने रामायण और वेदव्यास ने महाभारत के माध्यम से राज्य एवं राजा का प्रजा के साथ सम्बन्धों को दृष्टांतो के रूप में प्रस्तुत किया।

भारत में राज्य की अवधारणा, राज्य की उत्पत्ति एवं उसका विकास के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय साहित्य में सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्व वर्णन उपलब्ध नहीं है, फिर भी इसके सम्बन्ध में यत्र–तत्र विवरणों का जो उल्लेख मिलता है, उनके आधार पर हम भारत के राज्य की अवधारणा की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय जीवन द"ान में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। इनमें से मोक्ष की प्राप्ति को जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है, जिसकी प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ, तथा काम तीन साधन स्वीकार किये गये हैं। मनुष्यों के द्वारा प्रयत्न करने का परिणाम राज्य माना गया है।[1] दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय मान्यतानुसार, मोक्ष की प्राप्ति के लिए राज्य को एक आव"यक एवं महत्वपूर्ण साधन माना गया है।

© 2008 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

How to Cite:
(Aug 2008). प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा
***International Journal of Economic Perspectives*), Vol 2 (8) 32-36.**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

राज्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए शुक्रनीति में कहा गया है, ''जैसे इन्द्र की पत्नी कभी भी विधवा नहीं हो सकती, उसी प्रकार धर्म विमुख लोग भी, जो मोक्ष के आकांक्षी नहीं हैं, राजा (राज्य) के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते''[2] सोमदेव ने ''नीतिवाक्यामृत'' के पहले ही सूत्र में राज्य को इसलिए प्रणाम किया क्योंकि राज्य ही धर्म और अर्थ का फलदाता है।[3] इसी तरह शुक्र ने भी राज्य को इसलिए नमस्कार किया क्योंकि राज्य त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का फलदाता है।[4]

प्राचीन साहित्य में राज्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए राज्यविहीन अराजक द"ाा के परिणामों को स्पष्ट किया गया। मनुस्मृति के अनुसार राजा के न होने पर जब मनुष्य यत्र–तत्र भागने लगे, तब भगवान ने वि"व की रक्षा के लिए राजा की सृष्टि की।[5] महाभारत में अराजक द"ाा के बारे में विस्तार से लिखा गया है। जिसके अनुसार, चिरकाल में मनुष्य बिना राजा के रहते थे। वहाँ मत्स्य– न्याय व्याप्त था। इसको दूर करने के लिए उन्होंने आपस में एक समझौता किया तथा परस्पर वि"वास उत्पन्न किया। पर पारस्परिक वि"वास पर वे चल नहीं सके। तब सभी लोग मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और बोले, ''हे स्वामी बिना राजा के हम विना"ा की ओर जा रहे हैं। हम लोगो को आप एक राजा दें। हम सभी उसकी पूजा करेंगे और वह हमारी रक्षा करेगा'' तब ब्रह्मा जी ने मनु को नियुक्त किया। किन्तु मनु ने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि हम पाप कर्मों से डरते हैं। मनुष्यों पर राज्य करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि वे धूर्त एवं झूठे होते हैं। इस पर जनता ने उन्हें आ"वासन दिया कि आप पाप से न डरें। यह उसी को लगता है जो उसे करता है। आपके कोष के लिए हम लोग अपने प"ाुधन तथा धातुओं का पांचवाँ भाग, अन्न का दसवाँ भाग एवं पुण्य (धर्म) का चौथाई भाग देंगें। इस शक्ति से आप हम लोगों की सुरक्षा उसी प्रकार करें जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है। इस पर मनु ने राजा बनना स्वीकार कर लिया।[6]

आचार्य कौटिल्य ने भी अराजकता एवं परिणामतः राज्य की उत्पत्ति पर प्रका"ा डालते हुए कहा है, मत्स्य–न्याय से अभिभूत हुई प्रजा ने वैवस्वत् मनु को अपना राजा बनाया और अपने धान्य का छठा भाग तथा पण्य और सुवर्ण का दसवाँ भाग, उसके भागधेय के रूप में उसे प्रदान करने की व्यवस्था की।

© 2008 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

How to Cite:
(Aug 2008). प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा
***International Journal of Economic Perspectives*), Vol 2 (8) 32-36.**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

राज्य सम्बन्धी प्राचीन भारतीय अवधारणा में दण्ड को वि"ोष महत्व दिया गया है और समाज की व्यवस्था को स्थापित करने के लिए दण्ड को एक आव"यक कारक माना गया है। महाभारत के अनुसार दण्ड द्वारा ही अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त का परिरक्षण, परिरक्षित का परिवर्द्धन एवं परिवर्द्धित का सदोपयोग और तीर्थादि में वितरण सम्भव है।[8] अतः समाज की सारी व्यवस्था दण्ड पर आश्रित मानी गयी है। दण्ड के लिए राज्य को आव"यक माना गया है क्योंकि राज्य को ही व्यक्ति को दण्ड देने का अधिकार है। व्यक्ति, को व्यक्ति दण्ड नहीं दे सकता।[9]

इस प्रकार प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राज्य की अवधारणा एक वृहद् स्वरूप में विद्यमान थी। मोक्ष की प्राप्ति, अराजकता का अन्त तथा दण्ड प्रयोग के लिए राज्य की आव"यकता को स्वीकार किया गया और इन्हीं उद्दे"यों की प्राप्ति के लिए राज्य नामक संस्था का प्रादुर्भाव हुआ, जो विकास क्रम में शांति, सुव्यवस्था, न्याय तथा सुरक्षा का प्रतीक बन गया और भारतीय समाज एवं संस्कृति के विकास एवं उत्कर्ष में राज्य ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

प्राचीन भारतीय राज"ाास्त्र के आचार्यों ने राज्य की जो अवधारणा प्रस्तुत की वह सप्तांग स्वरूप की है, जिसके अनुसार राज्य के सात अंग या प्रकृतियाँ होती हैं। इन्ही सात अंगों अथवा प्रकृतियों के संयोग से राज्य का निर्माण होता है।

महाभारत में राज्य के सात अंग–आत्मा (राजा), अमात्य, कोष, दण्ड (सेना) जनपद, मित्र और पुर बताये गये हैं।[10] मनु ने राज्य की सात प्रकृतियाँ स्वामी, अमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दण्ड एवं सुहृद् बताये हैं। आचार्य कौटिल्य ने भी राज्य के सप्तांग स्वरूप को स्वीकार किया और राज्य के इन सात अंगों को राज्य की सात प्राकृतियों की संज्ञा दी है तथा इन्हें स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र के नाम से सम्बोधित किया है।[12] आचार्य शुक्र ने भी राज्य का यही स्वरूप स्वीकार किया है। उनके मतानुसार भी राज्य के सात अंग स्वामी, अमात्य, सुहृद् कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल हैं।[13] इसी प्रकार कामंदक[14] ने भी राज्य के स्वरूप का वर्णन सप्तागं रूप में ही किया है।

© 2008 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

How to Cite:
(Aug 2008). प्राचीन भारत में राज्य की अवधारणा
***International Journal of Economic Perspectives*), Vol 2 (8) 32-36.**
Retrieved from https://ijeponline.com/index.php/journal/article

स्पष्टतः प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतको ने राज्य के स्वरूप की जो अवधारणा प्रस्तुत की वह सप्तांग स्वरूप की है। राज्य को एक शरीर के रूप में स्वीकार किया गया, जिसके सात अंग होते हैं। सातों अंगों का समान महत्व है, ये अंग कार्यवि"ाष्टता के सिद्धांत पर आधारित हैं। जो अंग जिस कार्य को करता है, वह उसमें वि"ाष्ट समझा जाता है। उस अंग की अपनी वि"ाष्टता के कारण कोई अन्य अंग उस कार्य को करने में असमर्थ्य रहता है। इसी कारण अपने स्थान पर सबका समान महत्व हैं। इन अंगो की उत्तमता एवं वि"ाुद्धता पर ही राज्य की उत्तमता निर्भर करती है। राज्य के इन अंगो में से यदि एक अंग भी विकारग्रस्त हो जाये तो सम्पूर्ण राज्य का स्वरूप ही विकृत हो जायेगा। राज्य को सुचारू एवं प्रभाव"ाली रूप से कार्य करने के लिए यह आव"यक है कि उसके ये सभी अंग स्वस्थ्य एवं विकार रहित रहें।

संदर्भ सूची

1. डॉ० परमात्मा"ारण : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ० 259 मीनाक्षी प्रका"ान, मेरठ 2005
2. आचार्य शुक्रः शुक्रनीतिसारः 1.5
3. सोमदेव सूरी : नीतिवाक्यामृत, 1.1
4. डॉ० परमात्मा"ारण : प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थाएँ, पृ० 259 मीनाक्षी प्रका"ान, मेरठ 2005
5. मनुस्मृति, 7.3
6. महाभारत, शान्तिपर्व, 67.10–28
7. आचार्य कौटिल्यः अर्थ"ाास्त्र, 1.9
8. महाभारत, शान्तिपर्व, 69.77
9. आचार्य कौटिल्यः अर्थ"ाास्त्र 3.1
10. महाभारत, शान्तिपर्व, 69. 62–63
11. मनुस्मृति, 9.294
12. आचार्य कौटिल्यःअर्थ"ाास्त्र 6.1.1
13. आचार्य शुक्रः शुक्रनीतिसार 1.61–62
14. आचार्य कामंदकः कामदंकनीतिसार 4.1

© 2008 by The Author(s). ISSN: 1307-1637 International journal of economic perspectives is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.